रचनात्मक मूल्यांकन हेतु शिक्षक मार्गदर्शिका

सामाजिक विज्ञान के शैक्षणिक मद्दों पर पनर्विचार

कुमकुम रॉय

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) ने अगस्त 2010 में एक शिक्षक मार्गदर्शिका प्रकाशित की थी, जो उनकी वेबसाइट पर भी उपलब्ध है।[1] सत्र के अन्त में होने वाली परीक्षा (जिसे योगात्मक मूल्यांकन कहा जाता है) के विपरीत विद्यार्थी के रचनात्मक मूल्यांकन में मदद पहुँचाने के लिए तैयार किया गया यह दस्तावेज़ कई वजहों से बहुत महत्वपूर्ण है। टीचर्स मैनुअल ऑन फॉर्मेटिव असेसमेंट (रचनात्मक मूल्यांकन हेतु शिक्षक मार्गदर्शिका - यहाँ से इसे टीएमएफए कहेंगे) नाम से प्रकाशित यह मार्गदर्शिका राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2005 के अन्तर्गत कक्षा-9 के लिए तैयार की गई पाठ्य पुस्तकों और पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर बनाई गई है और इसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र और आपदा प्रबन्धन को शामिल किया गया है।

इस पाठ्यक्रम रूपरेखा और पाठ्य पुस्तकों, दोनों को लेकर काफी विवाद और चर्चाएँ हुईं। इसके पाँच से छः साल बीतने के बाद आई यह मार्गदर्शिका यद्यपि एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है, पर इसकी ओर लोगों का ध्यान और रुचि कम रही है। बहुत सम्भव है कि इसे अत्यधिक काम करने

[1] *इस मार्गदर्शिका के जो भी सन्दर्भ यहाँ दिए गए हैं उन्हें cbse.nic.in वेबसाइट से ही लिया गया है और इसे 13 जून 2011 को डाउनलोड किया गया था।*

वाले उन शिक्षकों द्वारा पढ़ाने के एक उपकरण के रूप में काम में लाया जाने लगा हो/लाया जाए, जो हमारी स्कूली व्यवस्था में काम के बोझ की सबसे ज़्यादा मार झेलते हैं। इसलिए इस मार्गदर्शिका को सिद्धान्तों और विषयवस्तु, तथा शामिल की गई सामग्री और छोड़ दी गईं चीज़ों के सन्दर्भ में समझने की ज़रूरत है। यह भी ज़रूरी है कि पाठ्यक्रम रूपरेखा में निर्धारित किए गए दिशा-निर्देशों के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन किया जाए, जो लोकतंत्रीकरण की चुनौतियों पर खरा उतरने के लिए शिक्षा में खुलापन लाने तथा विभिन्न तरीकों के द्वारा विविधता का सम्मान करने की अपनी सम्भावना के लिए अनूठा दस्तावेज़ था। मैं कोशिश करूँगी कि उन मुद्दों को उजागर कर सकूँ जिन पर चर्चा, विवाद और विरोध के द्वारा कोई समाधान निकाला जा सकता है।

मूल्यांकन से क्षमताओं तक

टीएमएफए के बिलकुल शुरुआती अनंकित पृष्ठ पर एक हिन्दी कविता है। इस कविता की सबसे दिलचस्प और उद्घाटक बात है उसकी दोहराई जाने वाली टेक के शब्द -

निरन्तर *योग्यता* के निर्णय से

परिणाम आकलन होगा

(तिरछे अक्षर मेरे द्वारा)

यानी कि परिणाम निरन्तर हासिल क्षमताओं के आधार पर तय होंगे। *योग्यता* किसी भी तरह से मूल्यांकन के समतुल्य नहीं हो सकती। और जैसे-जैसे हम मार्गदर्शिका में आगे बढ़ते हैं, हमें क्षमताओं को लेकर पूर्वाग्रह होने के, और इनका उपयोग विद्यार्थियों को श्रेणीबद्ध करने, उन्हें अभ्यास कार्य सौंपने, और उनका मूल्यांकन करने के लिए किए जाने के स्पष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं। इनके सम्भावित निहितार्थों को समझने के पहले आइए कुछ उदाहरणों पर गौर करें।

मार्गदर्शिका की भूमिका में नीचे दी गई बात कही गई है (पृ. xxxviii):

विविध प्रकार की बुद्धियों की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षक विद्यार्थियों को अभ्यास कार्य सौंपने के लिए कुछ लचीला तरीका अपना सकते हैं। उदाहरण के लिए, लेखन कार्यों में बेहतर करने वाले विद्यार्थियों को प्रायोगिक कार्य में अच्छे विद्यार्थियों से भिन्न कार्य दिए जा सकते हैं।

यह दो कारणों से महत्वपूर्ण है। एक तरफ, हम विद्यार्थियों का दो श्रेणियों में वर्गीकरण पाते हैं - वे जिनका कौशल लेखन में ज़्यादा है, और वे जो

प्रायोगिक कार्य में ज़्यादा अच्छे हैं। ऐसा लगता है जैसे हम वापस ऊँचे-नीचे वाली वर्ग क्रम व्यवस्था की तरफ लौट रहे हैं, एक ओर सोचने वाले और दूसरी ओर करने वाले, एक तरफ बुद्धिजीवी और दूसरी ओर मज़दूर। और ज़्यादा चिन्ता की बात यह है कि इनमें से प्रत्येक श्रेणी के बच्चों को उन चीज़ों के लिए प्रोत्साहन दिया जाना है जिनमें वे पहले से ही बेहतर करते हैं - विद्यार्थियों को उन्हीं श्रेणियों में बाँधकर रख देने से जिनमें वे अच्छा करते हैं, उनके लिए कुछ भी ऐसा सीखने का अवसर समाप्त हो जाता है जिसे वे कठिन महसूस करते हों, या जो उनके लिए कुछ अलग या चुनौतीपूर्ण हो।

मार्गदर्शिका के अन्य स्थानों पर, यह श्रेणीकरण ज़्यादा विस्तृत दिखाई देता है। अतः भूगोल के लिए एक सम्भावित प्रोजेक्ट (टीएमएफए पृ. 69-70) के सन्दर्भ में, सुझाया गया हैः

वे विद्यार्थी जो खोजी प्रकृति के हैं उन्हें जलवायु, वनस्पति और वन्य जीवन पर जानकारी एकत्र करना चाहिए। वे जिनमें लेखन के प्रति एक अन्तःप्रेरणा है उन्हें पोस्टर लिखना चाहिए। चित्रकारी में अच्छे विद्यार्थियों को मानचित्र का कार्य करना चाहिए या फिर वे वनस्पति, पत्तियों के प्रकार, पेड़ों की ऊँचाई, जड़ों के प्रकारों जैसे मैनग्रोव पेड़ों के मामले में उनकी साँस लेती जड़ों आदि को दर्शा सकते हैं। फिर वह विद्यार्थी जो चतुर वक्ता हो, सारे बिन्दुओं को जोड़कर उस पोस्टर प्रदर्शनी के बारे में बोलता है जो उन्होंने जलवायु, वनस्पति और वन्यजीवन के अन्तर्सम्बन्धों पर तैयार की होगी। इस तरह अलग-अलग प्रतिभाओं वाले सभी बच्चों को एक मौका मिलता है और उनकी प्रतिभा को सही ढंग से आँका जाता है।

एक स्तर पर, खोजियों, लेखकों, चित्रकारों और वक्ताओं का जमघट तैयार करना एक अच्छा विचार मालूम पड़ता है और मिलजुल कर काम करना वाकई एक अच्छी कार्यनीति है। लेकिन, मैं फिर दोहराऊँगी, यह सम्भावना चिन्ताजनक है कि विद्यार्थियों को किसी खास तरह की विशेषज्ञता हासिल करने के लिए ही प्रोत्साहित किया जाएगा और उन्हें अन्य प्रकार के कौशलों को हासिल करने का मौका नहीं मिलेगा।

एक अन्य अवसर पर, इस बार अर्थशास्त्र के खण्ड में (टीएमएफए पृ. 121 और अन्य जगह भी), फील्डवर्क वाले किसी प्रोजेक्ट में निम्नलिखित नियम शामिल हैंः

यह सम्भव है कि कुछ विद्यार्थियों ने सामूहिक गतिविधि में सक्रियता से भाग न लिया हो। शिक्षक ऐसे विद्यार्थियों से अपने समूह की मालुमातों की

एक संक्षिप्त प्रस्तुति देने को कह सकते हैं।

यहाँ दिलचस्प बात है श्रम का विभाजन - एक वे जो तथ्यों की असल खोज करते हैं, और दूसरे वे जो मालुमातों को प्रस्तुत करते हैं। इनमें से प्रत्येक भेद में यह सम्भावना छिपी है कि आगे जाकर ये ऊँच-नीच के क्रम बन जाएँ और विद्यार्थियों के बारे में और उनके बीच कुछ बँधी-बँधाई धारणाएँ बन जाएँ। इसलिए शैक्षणिक नीतियों के रूप में इनकी प्रभावशीलता पर कहीं ज़्यादा चिन्तन करने की ज़रूरत है। साथ ही, खोज करना, चित्र बनाना, लिखना और बोलना ऐसे बुनियादी कौशल हैं जिनकी अपेक्षा सभी विद्यार्थियों से की जानी चाहिए, और ये केवल सामाजिक विज्ञानों तक सीमित नहीं हैं, जहाँ तमाम कालों, स्थानों, समुदायों और सामाजिक समूहों के बीच तुलना करने के कौशलों को विकसित करने पर काफी ज़ोर दिया जाता है। इसके अलावा, पाठ्यसामग्री - लिखित, दृश्यमान, और मौखिक - को विश्लेषित करने पर और अलग-अलग दृष्टिकोणों से इनका अर्थ लगाने पर ज़ोर दिया जाता है। यदि मूल्यांकन के तरीके में इन कौशलों पर शुरू में ही और लगातार ध्यान न दिया जाए, तो दशकों से चले आ रहे मूल्यांकन के तरीकों की ओर वापस मुड़ने की प्रवृत्ति पैदा हो सकती है।

रटने की पद्धति पर वापस लौटना

एक अन्य स्तर पर, चिन्ताजनक बात है जिस ढंग से ऐसे अभ्यासों को इस मार्गदर्शिका में दोबारा डाल दिया गया है जो रटने वाले तरीके की तरफ जाने की सम्भावनाएँ पैदा करते हैं। यहाँ इसके बस कुछ उदाहरण देती हूँ। एक तरफ तो, इस मार्गदर्शिका में जो लिखा गया है उससे यह भरोसा मिलता है कि ऐसी स्थितियाँ नहीं आने दी जाएँगी। प्रस्तावना (टीएमएफए पृ. xii) में हमें बताया गया है:

बच्चों के ज्ञान का मूल्यांकन करते समय प्रश्नों को शिक्षण और अध्ययन के केन्द्र में रखा गया है। इससे शिक्षण 'सही उत्तर' पर ध्यान देने के अपने फोकस से हटकर 'एक उर्वरक सवाल' पर ध्यान देने की ओर मुड़ जाता है।

लेकिन फिर भी, जब हम इस मार्गदर्शिका के अन्दर विद्या को परखने के खास उदाहरणों को देखें तो हम अधिकांशतः यह पाते हैं कि उन्हीं परीक्षणों की ओर लौटा जा रहा है जिनमें अन्य सम्भावनाओं को टटोलने की बजाय विवरणों को, अक्सर गैर-ज़रूरी विवरणों को, याद करने की ज़रूरत होती है। इस तब्दीली का आधार आमुख कथन के अन्त में ही रख दिया गया है (पृष्ठ xlii) जहाँ हम पढ़ते हैं:

ऐसा करने के लिए यह ज़रूरी है कि सामाजिक विज्ञानों के सभी घटकों जैसे तथ्य, तारीखें, घटनाएँ, कानून, स्थान, प्रचलनों और तौर-तरीके तथा सिद्धान्तों को पढ़ाने के लिए एक-सा समय मिले और उनके लिए समान अंक नियत हों। (तिरछे अक्षर मैंने किए हैं)

एक बार फिर, इस कथन में छिपे निहितार्थों के बारे में सोचें। सामाजिक विज्ञान के अध्यापन में लगाए जाने वाले समय, और उसके मूल्यांकन को एक उपयोगी जाँच-सूची में बदल दिया जाता है, जो अपने साफ-सुथरेपन और स्पष्ट सरलता के कारण शिक्षक को भी आकर्षक लगेगा। ध्यान देने वाली बात है तथ्यों, तारीखों और घटनाओं को दी गई जगह। सामाजिक विज्ञानों को लेकर होने वाली बहुत-सी चर्चा तथ्यों को एक अनूठा, सन्दर्भ-रहित महत्व देने की असम्भवता के इर्द-गिर्द हुई है - हमने इस बात पर बहस की है कि तथ्यों का तभी कोई महत्व होता है जब वे विश्लेषण के किसी ढाँचे के अन्तर्गत आते हों और उन्हें विशिष्ट दृष्टिकोणों से देखा/प्रस्तुत किया जाता हो। तथ्यों को स्वतंत्र मानने से, जैसा कि इस सूची में किया गया है, इस समझ के विपरीत जाने की ज़मीन तैयार हो जाती है।

खास तौर से, इतिहास के सन्दर्भ में, तारीखों को याद करने के साथ जुड़ी सनक, जिससे विद्यार्थियों की कई पीढ़ियाँ खौफ खाती रहीं, से एनसीएफ और उसके तहत बनी पाठ्य पुस्तकों में जानबूझकर और व्यवस्थित ढंग से छुटकारा पा लिया गया और उसके बदले ऐसी पाठ्यसामग्री को शामिल किया गया जहाँ तारीखों को पृष्ठभूमि में रखा जाता है, ताकि तारीखों को रटकर उन्हें पवित्र मंत्रों की भाँति जपने की बजाय बच्चों को बस कालानुक्रम की समझ हासिल हो सके। इसलिए, कम-से-कम यह तो कहना ही होगा कि इस सूची में तथ्यों और तारीखों को प्रमुख स्थान देना और सिद्धान्तों को पीछे रखना चौंकाने वाली बात लगती है। इसके अलावा, कक्षा की परिस्थिति में जहाँ शिक्षक लगातार चीज़ों को प्राथमिकता के आधार पर तय करने के लिए मजबूर होते हैं, यह आश्चर्यजनक नहीं होगा यदि शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों ही इस जाँच सूची की पहली कुछ चीज़ों की ओर रुख कर लें।

ये सम्भावनाएँ और भय तब हकीकत बन जाते हैं जब शिक्षकों की मदद के लिए प्रतिरूपों के रूप में तैयार किए गए सवालों के कुछ उदाहरणों पर गौर करते हैं। जो प्रश्न मैंने यहाँ बताने के लिए चुने हैं वे फ्राँसीसी क्रान्ति वाले अध्याय के लिए सुझाए गए अभ्यासों से लिए गए हैं, जो कक्षा 9 की इतिहास की पुस्तक (एन.सी.ई.आर.टी.) के रोचक और चुनौतीपूर्ण अध्यायों में से एक है।

निम्नलिखित प्रश्न (मार्गदर्शिका के पृ. 3-4 पर) उदाहरण स्वरूप पेश किए जा सकते हैं :

सही उत्तर के लिए (सही) का चिन्ह लगाएँ और गलत उत्तर के लिए (X) का निशान लगाएँ।

गलत उत्तर की जगह सही उत्तर लिखें।

1. फ्राँसीसी समाज दो वर्गों (एस्टेट्स) में बँटा हुआ था।
2. लुई सोलहवाँ 1774 में फ्राँस की राजगद्दी पर विराजमान हुआ।
3. तीसरे वर्ग (एस्टेट) के लोगों ने 1789 में खुद को राष्ट्रीय सभा के रूप में घोषित कर दिया।
4. नेपोलियन बोनापार्ट 1780 में फ्राँस का सम्राट बना।
5. 1791 का फ्राँसीसी संविधान मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा के साथ आरम्भ हुआ।

ध्यान दें कि दिए गए 5 प्रश्नों में से चार में तारीखों को याद किया जाना है।

लेकिन, सौभाग्यवश, सारी गतिविधियाँ इसी तरह की नहीं हैं। कुछ ज़्यादा खुली हुई भी हैं, जैसे कि, इस विषय के इर्द-गिर्द होने वाली बहसः "फ्राँसीसी क्रान्ति ने लोकतंत्र की नींव रखी," (पृ. 6), जिसका उद्देश्य अन्य बातों के साथ यह लक्ष्य हासिल करना हैः

क्रान्ति के सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह के प्रभावों को समझना। फ्राँस और दूसरे देशों पर हुए इसके असर का विश्लेषण करना। अपने विचारों को व्यवस्थित करने का कौशल विकसित करना। वाक्-कौशल और आत्मविश्वास विकसित करना।

कम-से-कम, इसमें एक खुला अभ्यास बनने की सम्भावना है। लेकिन, पाठ्य पुस्तक के इस अध्याय की अधिकांश सम्पदा का इनमें से कई गतिविधियों के द्वारा उपयोग ही नहीं किया गया है। मैं केवल तीन उदाहरण दूँगी - इस अध्याय में समझाया गया है कि किस प्रकार दृश्यमान संकेतों का इस्तेमाल क्रान्तिकारी विचारों को प्रकट करने के लिए किया जाता था। इन संकेतों का अर्थ समझने, इन्हें पोस्टरों पर उपयोग करने पर आधारित सृजनात्मक अभ्यासों के माध्यम से विद्यार्थियों की दिलचस्पी जगाई जा सकती है और साथ ही विद्यार्थी को दृश्यों द्वारा चीज़ों को निरूपित करने के कुछ तरीकों के प्रति संवेदित किया जा सकता है।

जो कुछ अन्य गतिविधियाँ सुझाई गई हैं उनमें है, एक हफ्ते तक समाचार-पत्रों के माध्यम से किसी घटना पर नज़र रखना। यह विचार इस तथ्य

से उभरा है कि फ्राँसीसी क्रान्ति के दौरान भी समाचार-पत्र विचारों और सूचनाओं के प्रचार और प्रसार का महत्वपूर्ण माध्यम थे। इसी विचार में टीवी खबरों या इंटरनेट स्रोतों का इस्तेमाल करके कुछ भेद किए जा सकते थे जिससे विद्यार्थी को मीडिया को समीक्षात्मक ढंग से समझने का मौका मिलता, और वह समझने की कोशिश कर पाता कि क्यों कोई घटना खबर बनने योग्य समझी जाती है और उसे खास बनाने की नीतियाँ क्या होती हैं।

नीचे दिया गया सवाल इस अध्याय से लिया गया तीसरा उदाहरण है (भारत और समकालीन दुनिया, एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली, 2006, पृ. 24) :

फ्राँसीसी समाज के कौन-से समूहों को क्रान्ति से फायदा हुआ? किन समूहों को सत्ता त्यागने के लिए मजबूर होना पड़ा? फ्राँसीसी समाज के कौन-से तबकों को क्रान्ति के परिणामों से निराशा हुई होगी?

ध्यान दें कि किस प्रकार यह सवाल विद्यार्थी को एक ही घटना/प्रक्रिया को कम-से-कम तीन अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखने का अवसर देता है ताकि वह समझ सके कि इस घटना का असर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप से महसूस किया गया होगा। एक बार फिर, इस मार्गदर्शिका में ऐसी सम्भावनाओं का विस्तार नहीं किया गया है।

पाठ को महत्वहीन बनाना

अगर रटने की नीति अपनाने की ओर वापस लौटने का सामने दिख रहा संकट एक सम्भावना है, तो दूसरी सम्भावना है, जो सम्भवतः ज़्यादा घातक है, अध्यायों की विषयवस्तु और अवधारणाओं को स्पष्टतः मनोरंजक गतिविधियों में बदल देना। एक बार फिर, यह स्थिति ज़ाहिर तौर पर पढ़ने और सीखने के आनन्द की लोकप्रिय धारणा से निकलती है, और इसका एक और स्रोत है, मार्गदर्शिका के शब्दों में, शिक्षा हासिल करने की प्रक्रिया को एक मनोरंजक गतिविधि में बदल देना। यद्यपि इस तथ्य को स्वीकार करना अच्छा है कि हास्य एक बेहद मूल्यवान भावनात्मक और बौद्धिक गुण है, पर हमें उन स्थितियों के प्रति भी सतर्क रहते हुए समीक्षात्मक नज़रिया अपनाना चाहिए जहाँ हास्य का उपयोग किया जाता है, ताकि उन मुद्दों की चर्चा कहीं दब न जाए जो तकलीफदेह या बेचैन कर देने वाले हों। और ना ही हास्य द्वारा किन्हीं विषयों की गम्भीरता से ध्यान हटना चाहिए। उदाहरण के लिए, कार्टून जिन तरीकों से विभिन्न परिस्थितियों को लेकर

कोई सोच प्रगट करते हैं तो उनका मज़ा भी लिया जा सकता है और विश्लेषण भी किया जा सकता है, पर जिन बातों से शायद बचा जाना चाहिए वे हैं इस मार्गदर्शिका में प्रस्तावित अभ्यास। एक बार फिर, मैं तीन उदाहरण दूँगी, जो स्पष्टतः कक्षा 9 के इतिहास के पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तक पर आधारित हैं।

यह मार्गदर्शिका (पृ. 35-38) क्रिकेट वाले अध्याय के लिए सात-सात गतिविधियाँ प्रस्तावित करती है। हालाँकि, ऐतिहासिक विश्लेषण करने के कौशल को बढ़ाने में क्या उनकी कोई भूमिका होगी, इस पर तो बहस की जा सकती है, पर इन गतिविधियों में से दो इतनी ज़्यादा अप्रासंगिक हैं कि उनकी ओर तो ध्यान जाता ही है। एक में, शिक्षक द्वारा कक्षा के दो हिस्सों के बीच एक क्रिकेट मैच आयोजित करने की बात कही गई है। और दूसरी में, विद्यार्थी से अपेक्षा की गई है कि वह किसी मैच की आशु कमेंट्री (आँखों देखा हाल) प्रस्तुत करे। कमेंट्री के मामले में, कमेंटेटेर यानी विद्यार्थी को इन कसौटियों पर परखा जाना होगाः वाक्-कौशल, उस खेल की समझ, स्वर का उतार-चढ़ाव। जहाँ इस अभ्यास का मनोरंजन मूल्य निश्चित ही बच्चों में रोमांच और उत्साह पैदा करने में मदद कर सकता है, पर इतना तो कम-से-कम कहना ही पड़ेगा कि अध्याय में वर्णित अवधारणाओं के ऐतिहासिक महत्व के सन्दर्भ में इस अभ्यास की प्रासंगिकता को समझना मुश्किल है।

एक अपेक्षाकृत सरल, व्यावहारिक, पर कहीं ज़्यादा चुनौतीपूर्ण कार्यकलाप के बारे में सोचा जा सकता था। विद्यार्थियों से किसी एक क्रिकेट मैच की कमेंट्री को सुनने या देखने के लिए कहा जा सकता था, और फिर अध्याय में उठाए गए कुछ मुद्दों के सन्दर्भ में इसका विश्लेषण किया जा सकता था, जैसे राष्ट्रवाद, लिंग, जाति, वर्ग और समुदाय से जुड़े मुद्दे और साथ ही व्यवसाय के मुद्दे तथा किस प्रकार वे इस खेल के प्रस्तुतिकरण को अतिक्रमित करते हैं। ऐसी गतिविधि कोई क्रिकेट मैच आयोजित करने की बजाय कहीं ज़्यादा फलदायी होती।

इस मार्गदर्शिका में अपनाई गई शैक्षणिक नीतियों में सम्भवतः सबसे विचित्र मोड़ लिया है नाज़ीवाद के अध्याय के लिए प्रस्तावित गतिविधियों में। एक बार फिर, यदि हम पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तक का रुख करें, तो पाते हैं कि यह अध्याय जटिल, चुनौतीपूर्ण और तकलीफदेह है क्योंकि वह इतिहास की सबसे दुखद कड़ियों में से एक को हमारे सामने रखता है और उसे समझने में हमारी मदद करता है।

मार्गदर्शिका में (पृ. 18) में, इस अध्याय के लिए प्रस्तावित अन्तिम

गतिविधि का शीर्षक है 'पढ़ाई में आनन्द है'। इसमें खाली खानों का एक पिरामिड है और पहला अक्षर दिया गया है, और बाकी अक्षर बच्चों को भरना हैं। संकेत इस प्रकार हैं:

- जर्मनी की सबसे अधिक उत्पीड़ित जाति
- हिटलर द्वारा बनाई गई पार्टी
- हिटलर के अनुसार सबसे शुद्ध जाति
- पहला जर्मन गणतंत्र
- खुफिया पुलिस
- युवा संगठन
- जर्मन संसद
- यहाँ अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए थे।

कम-से-कम इतना तो यहाँ कहना ही पड़ेगा कि इन तथ्यों को ऐसे अभ्यास के हिस्से के रूप में पेश करना, जिसे विद्यार्थी के लिए आनन्ददायक समझा जा रहा हो, बेहद तकलीफदेह बात है।

अपमार्जन और विलोपन

दूसरी समस्याएँ भी हैं। वे उतनी स्पष्ट दिखाई नहीं देतीं, क्योंकि कई चीज़ें बिलकुल ही नदारद हैं। हम कई जगहों पर इसे देख सकते हैं जैसे धार्मिक पहचानों, क्षेत्रीय मतभेदों, जाति के मामले में। हिन्दू या हिन्दू धर्म की कोई बात नहीं की गई है, रूस के मुस्लिम सुधारकों का जोड़ी मिलाओ के अभ्यास में एक ज़िक्र हुआ है (पृ. 12), इस्लाम का कोई ज़िक्र नहीं हुआ है। ईसाईयत का ज़िक्र नीचे दिए प्रश्न में हुआ है, जिसका उल्लेख मत आधारित प्रश्न के उदाहरण के रूप में किया गया है (पृ. xlvii):

कानून, न्याय और धर्म को लेकर तथा व्यक्ति के कर्तव्यों को लेकर यहूदी-ईसाई (जूडियो-क्रिश्चियन) और यूनानी-रोमन दृष्टिकोणों के बीच की समानताओं और अन्तरों का विश्लेषण करें।

बुद्ध और बौद्धधर्म की कोई बात नहीं की गई है, इसी तरह जैनियों का, जैन धर्म का या महावीर का कोई ज़िक्र नहीं किया गया है। यही हाल सिक्खों और सिक्ख धर्म का है। इन सब का ज़िक्र न किए जाने के पीछे एक तर्क यह हो सकता है कि ये सीधे-सीधे किसी भी अध्याय या विषय की विषयवस्तु नहीं हैं। पर जैसा कि हम देख चुके हैं, कई ऐसी प्रस्तावित गतिविधियाँ हैं जिनकी भी पाठ्यक्रम या विषय में सीधे-सीधे कोई प्रासंगिकता नहीं है, इन पर लगने वाला वक्त और जगह का उपयोग धार्मिक पहचान, जिसमें कट्टरपन्थ भी शामिल हो लेकिन बात उसी तक सीमित न रहे,

से जुड़े मुद्दों की चर्चा करने के लिए किया जा सकता था ताकि विद्यार्थी कई बातें सीख सकें और उनके लिए चुनौतियाँ भी खड़ी हो सकें।

सांप्रदायिकता का ज़िक्र सिर्फ एक बार इस प्रश्न में होता है (पृ. 35):

किस प्रकार अँग्रेज़ों ने क्रिकेट के माध्यम से खेल के शुरुआती दौर में सांप्रदायिकता के बीज बोए?

और कट्टरपन्थ तो कहीं है ही नहीं। दूसरे शब्दों में, धर्म के क्षेत्र को पूर्णतः अनदेखा करते हुए एक सुखद धर्मनिरपेक्ष स्वर्ग रचा गया है। ऐसा लगता है, धर्मनिरपेक्षता को भी एक पहले से मौजूद यथार्थ मान लिया गया है, बजाय ऐसी श्रेणी मानने के जिसकी समझ को अभ्यासों/गतिविधियों के सन्दर्भ में, उसके निहितार्थों का सामना करके और गहरा किया जा सकता है। उन तीन अवसरों पर जब इसकी चर्चा की गई, उनमें से दो तो संविधान की प्रस्तावना के ही ज़िक्र हैं, और ये प्रारम्भिक पन्नों पर ही हैं, पाठ के असली हिस्से में सिर्फ एक बार धर्मनिरपेक्षता शब्द का ज़िक्र होता है (पृ. 97)। बल्कि इस अन्तिम मौके पर भी प्रस्तावित गतिविधि दरअसल एक दलीय व्यवस्था और बहुदलीय व्यवस्था के नफा-नुकसानों की चर्चा करती है: इस प्रकार धर्मनिरपेक्षता को एक ही झटके में उसका ज़िक्र भर करके गायब कर दिया जाता है।

इस तरह के ज़िक्र और विलोपन, क्षेत्र और जाति जैसे अन्य मुद्दों के सम्बन्ध में भी दिखते हैं। जाति को किस अन्दाज़ में पेश किया गया है इसकी पड़ताल करने पर हम इस मार्गदर्शिका को बनाते वक्त इस्तेमाल की गई नीतियों और सम्बन्धित चिन्ताओं से अवगत हो जाते हैं। पूरे दस्तावेज़ में कहीं भी दलित शब्द का उपयोग नहीं किया गया है। खुद जाति शब्द भी कुछ ही बार इस्तेमाल हुआ है। एक स्मरण का अभ्यास दिया गया है (पृ. 98) जिसमें विद्यार्थी से लोकसभा में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या बताने को कहा गया है।

ऐसा एक और उदाहरण आमुख कथन में (पृष्ठ xxii-xxiii) अभ्यास कार्य के रूप में सामने आता है। इससे इस मार्गदर्शिका को बनाते वक्त इस्तेमाल में लाई गई कुछ नीतियाँ साफ होती हैं। यहाँ कक्षा 8 के इतिहास के अध्याय, महिलाएँ, जाति और सुधार, पर आधारित नाटकीकरण का एक अभ्यास प्रस्तावित किया गया है। इसके निर्देश इस प्रकार हैं:

1. विद्यार्थियों को समूहों में विभाजित किया जाएगा। वे अपने-अपने समूहों में चर्चा करके विभिन्न कालों के दौरान भारतीय समाज में फैली सामाजिक बुराइयों में से किसी भी एक पर एक छोटा-सा व्यंग्य तैयार करेंगे।

2. इन सामाजिक बुराइयों में सती, बाल विवाह, कन्या शिशु हत्या, महिलाओं को शिक्षा हासिल न करने देना और लैंगिक विषमता को शामिल किया जा सकता है।
3. प्रत्येक समूह एक छोटा-सा व्यंग्य तैयार करेगा और उसे प्रस्तुत करेगा। प्रत्येक विद्यार्थी से कोई संवाद बोलने को कहा जाएगा।
4. प्रस्तुति के बाद, विद्यार्थियों के बीच इस पर चर्चा होगी।

ध्यान दें कि कैसे जाति, जिसका शीर्षक में उल्लेख है, और वह पहले बिन्दु में भी अन्तर्निहित है, फिर भी उसे दूसरे बिन्दु में बनाई गई असल सूची में से गायब कर दिया गया है। साफ है, कि लैंगिक भेदभाव को तो चर्चा करने योग्य माना जाता है, पर जाति से जुड़े मुद्दों को कहीं ज़्यादा कठिन पाते हुए सबसे उचित यही माना जाता है कि उनसे बचा जाए, कम-से-कम अव्यक्त तौर पर।

उन कुछ मौकों में से एक, जहाँ जाति को एक श्रेणी के रूप में व्यक्त किया गया है, परिधानों के चलन से जुड़े एक फील्डवर्क अभ्यास के दौरान आता है, जहाँ कई सारे सवालों के बीच धर्म और जाति के सन्दर्भ में परिधानों की विविधताओं के बारे में सवाल पूछने की गुंजाइश है (पृ. 41)। एक और मौके पर, दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव पर होने वाली एक प्रस्तुति पर, विद्यार्थियों को प्रेरित किया जाता है कि वे उसकी तुलना या तो भारत में होने वाले जातीय और धार्मिक भेदभाव से करें, या औपनिवेशिक काल के दौरान भारत के प्रति अँग्रेज़ों की नीतियों में रही नस्लभेद की भावना से करें। निश्चित ही यह इस मार्गदर्शिका में उठाया गया एक साहसी कदम है, पर यह अपने तरह की एक ही कोशिश है। इसलिए एक ऐसे मुद्दे को, जिसे साफ तौर पर निरन्तर सामने लाने और उस पर चर्चा करने की ज़रूरत है, ज़्यादा-से-ज़्यादा बस एक वैकल्पिक अभ्यास के रूप में शुमार कर लिया गया है।

क्या महिलाएँ 'सुरक्षित' हैं?

इन अभ्यासों के विपरीत, यह प्रतीत होता है कि इस मार्गदर्शिका में महिलाओं ने अपेक्षाकृत ज़्यादा जगह पाई है। हालाँकि, यह तथ्य अपने आप में आश्वस्त करने वाली बात लग सकती है, पर उन सन्दर्भों और विषय वस्तुओं की पड़ताल करना उचित होगा जहाँ महिलाओं की बात हुई है, साथ ही लिंग और लैंगिकता या पितृसत्ता जैसे ढाँचों या धारणाओं के मुद्दों को सामने लाने की हिचकिचाहट पर भी ध्यान देना चाहिए।

लैंगिक विषमता का ज़िक्र दो बार होता है, एक बार, पहले उल्लिखित

उदाहरण में, एक सामान्य 'सामाजिक बुराई' के रूप में (पृ. xxii) और फिर दोबारा, साक्षरता पर बने एक रेखाचित्र को पढ़ने के दौरान जो 'आर्थिक विकास की समझ', अध्याय से जुड़ी गतिविधियों का एक अंग है (पृ. 113)। भूगोल विषय के जनसंख्या वाले अध्याय में लिंग को जनसंख्याओं के एक चिन्हक (पृ. 74) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी खण्ड में घटते लिंग अनुपातों पर चर्चा करने का प्रावधान शामिल किया गया है (पृ. 74)। राजनीति विज्ञान के सन्दर्भ में प्रातिनिधिक संस्थाओं में महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव पर चर्चा का भी प्रावधान है (पृ. 95)।

जहाँ लिंग और लैंगिकता का सावधानीपूर्वक सीमांकित किए गए कुछ निश्चित सन्दर्भों में ज़िक्र किया गया है, वहीं लैंगिकता और पितृसत्ता सीधे-सीधे नदारद हैं। और, इसी सन्दर्भ में हम महिलाओं को लेकर किए गए अपेक्षाकृत अनगिनत उल्लेखों को देख सकते हैं।

महिलाओं को मतदान का अधिकार न होने का ज़िक्र 'जोड़ी मिलाओ' के अभ्यास में होता है (पृ. 87)। प्रतिनिधि सभाओं में सीटों के आरक्षण के सन्दर्भ में भी उनका उल्लेख हुआ है (पृ. 98-99)। फिर उनका उल्लेख समान आर्थिक मौकों की सुलभता से वंचित रहने वाले तबके में हुआ है (पृ. 112), और नाज़ी विचारधारा के भीतर अपनी स्थिति का आकलन करने के सन्दर्भ में भी उनका ज़िक्र होता है (पृ. 18-19)। उनका ज़िक्र कपड़ों के सन्दर्भ में हुआ है (पृ. 40)। और फिर एक सवाल ऐसा है जो दो बार दोहराया गया है (पृ. 40 और पृ. 43), जिसमें पूछा गया है कि भारतीय महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले कपड़ों में आखिर क्यों बहुत ज़्यादा बदलाव नहीं आया है, जबकि पश्चिमी देशों की महिलाओं के कपड़ों में दो विश्वयुद्धों के दरम्यान नाटकीय परिवर्तन हुआ है। दूसरी बार (पृ. 43) इस प्रश्न के साथ साड़ी पहने हुए तीन महिलाओं की तस्वीरें दी गई हैं।

एक तरफ तो, यह बात आश्वस्त करने वाली लग सकती है कि सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत ही तमाम शाखाओं में महिलाओं का ज़िक्र हुआ है। इसके अलावा, कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो महत्वपूर्ण विषमताओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं जो कि स्वागत योग्य है। पर साथ ही, एक व्यापक समस्या है जो इस प्रत्यक्षता के पीछे छिप जाती है। सारी महिलाओं को एक समान होने की श्रेणी में डाल दिया गया है और उनके बीच जाति, समुदाय, धर्म, वर्ग या अक्षमताओं जैसे भेदों के अन्य चिन्हकों का कोई उल्लेख नहीं है। तो, वास्तविकता में, महिलाओं की तरफ ध्यान तो खींचा गया है पर साथ ही साथ उसे सन्दर्भरहित बना दिया गया है।

इसी सन्दर्भ में महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले कपड़ों के प्रश्न को दोहराना

महत्वपूर्ण हो जाता है। ध्यान दें कि मार्गदर्शिका में एक जगह भारतीय महिलाओं और पश्चिमी देशों की महिलाओं के बीच भेद दर्शाया गया है। पश्चिमी देशों की महिलाएँ बदलावों को अंगीकार करती हैं जबकि प्रश्न से यह बात निकलकर आती है कि भारतीय महिलाओं का जीवन अपेक्षाकृत ठहरावपूर्ण होता है। हम देख सकते हैं कि यह प्रश्न एक बन्द प्रश्न की तरह पेश किया गया है - सवाल यह नहीं है कि क्या भारतीय महिलाएँ वही परिधान पहनती आ रही हैं, बल्कि सवाल है कि क्यों पहनती आ रही हैं। दूसरे, इसमें यह मान्यता दिखाई देती है कि भारतीय महिला नाम की एक सार्वभौमिक श्रेणी है और वे सभी महिलाएँ हमेशा से ही साड़ी पहनती आ रही हैं। इस तरह से पूछे जाने के चलते यह सवाल विद्यार्थी को यह मौका ही नहीं देता कि वह विभिन्न समयों, धर्मों, जातियों, समुदायों, वर्गों की महिलाओं के पहनावों के बीच के भेदों को देख सकें, पहचान सकें, समझ सकें। और इस तरह से प्रश्न पूछने पर यह तथ्य भी खो जाता है कि साड़ी का प्रयोग अलग-अलग पहचानों को सामने रखने के लिए अलग-अलग ढंग से पहनकर किया गया है। व्यापक बात है कि यह सामाजिक-राजनैतिक मुद्दों को अलग-थलग करके पेश करने के प्रयासों का एक नमूना है। इसमें लिंग, जाति और सामुदायिक पहचानों की अन्तर्सम्बन्धी प्रकृति की पड़ताल करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। इस प्रकार, चुनौतीपूर्ण शिक्षण की एक सम्भावना को लिंग के साथ जुड़े मुद्दों के एक मामूली और सतही अभ्यास में बदल दिया जाता है।

सरकारी नीतियों के प्रति रवैये

एक आखिरी क्षेत्र जिस पर हमें विचार करना है - सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति रवैया। पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकें सरकारी नीतियों पर समीक्षात्मक ढंग से सोच-विचार करने का पर्याप्त अवसर देती हैं, जिन्हें उनके उद्देश्यों, क्रियान्वयन और प्रभाव के सन्दर्भ में मूल्याकिंत किया जा सकता है। इनमें से अधिकांश सम्भावनाओं को इस पुस्तिका में बड़ी सावधानी के साथ दरकिनार कर दिया गया है। एक बार फिर, थोड़े-से उदाहरण इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होंगे। यहाँ, मैं अर्थशास्त्र से जुड़े खण्ड पर ध्यान केन्द्रित करूँगी। एक जगह (पृष्ठ 119) पर हमें पता चलता है कि गरीबी पर बने अध्याय से निकलने वाली एक सीख में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी 'भारत में सरकार द्वारा गरीबी उन्मूलन के लिए अपनाए गए उपायों को समझें और उनकी सराहना करें।' एक अन्य गतिविधि, गरीबी निवारण पर एक स्क्रेपबुक (संकलन-पुस्तिका) तैयार करना, में यह उद्देश्य शामिल कर दिया गया है:

'यह समझें की आखिर क्यों सरकार अपने तमाम प्रयासों के बावजूद गरीबी उन्मूलन नहीं कर पा रही है' (पृष्ठ 123)।

एकाध जगह इस दायरे से हटने का थोड़ा-सा मौका दिया गया है, जैसे कि, खाद्य सुरक्षा के प्रश्न के सन्दर्भ में नज़र आता है, जहाँ सीखने के उद्देश्य को तय करना कुछ ज़्यादा जटिल है:

'खाद्य आपूर्ति को सुनिश्चित करने में सरकार की भूमिका को समझें और उसका समीक्षात्मक मूल्यांकन करें' (पृष्ठ 125)।

पर, थोड़े ही आगे (पृष्ठ 128) विद्यार्थी से 'वितरण नियंत्रण (राशन) व्यवस्था के माध्यम से सरकार द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका को समझने, सराहने और उसका समीक्षात्मक मूल्यांकन करने' के लिए कहा जाता है।

कुछ अवसरों पर, इसके चलते इस तरह के दावे किए जाते हैं:

सरकार सहकारी संस्थाओं के लिए एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक की भूमिका निभाती है और उनकी गतिविधियों को बढ़ावा देती है और इसके लिए पूंजी मुहैया कराती है। इस तरह किसी सहकारी संस्था के कामकाज में सरकार की बहुत बड़ी भूमिका होती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई सहकारी आवास समिति बनाई जाना है, तो ज़मीन के आवंटन से लेकर समिति के सदस्यों को घरों के आवंटन तक सरकारी तंत्र का इस्तेमाल ज़रूरी होगा। सरकार ऐसी नीतियों के लिए समर्थन भी प्रदान करती है और इन नीतियों की समय-समय पर समीक्षा की जाती है और उनमें ज़रूरी सुधार किए जाते हैं (पृष्ठ 129)।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि इन उद्देश्यों को निर्धारित करने और दोहराने के साथ ही सरकारी नीतियों के समीक्षात्मक मूल्यांकन की कोई गुंजाइश नहीं रह जाएगी। सम्भावनाओं से भरे प्रश्न उठाने की तो बात छोड़ ही दें।

राजनीति विज्ञान के लिए प्रस्तावित एक गतिविधि के आशयों पर गौर करना भी उचित होगा (टीएमएफए पृष्ठ 83-84):

नीचे दिए गए विषयों पर (किसी भी एक पर) एक ऐलबम, कोलाज, बुलेटिन बोर्ड (सूचना पट्ट) या दीवार-अखबार तैयार करना।

1. कौन-सी बातें किसी सरकार को लोकतांत्रिक बनाती हैं?
2. कौन-सी बातें किसी सरकार को अलोकतांत्रिक बनाती हैं?
3. भारत में लोगों की न्यायोचित माँगें क्या हैं?

इस गतिविधि को करने से विद्यार्थी:-

उन कारकों की पहचान कर सकेंगे जो किसी सरकार को लोकतांत्रिक या

अलोकतांत्रिक बनाते हैं।

समझ सकेंगे कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में लोगों की वाजिब एवं गैर-वाजिब माँगें क्या हैं।

ज़ाहिर है कि इस गतिविधि में यह मान लिया गया है कि लोगों की वाजिब या गैर-वाजिब माँगों पर सर्वसम्मति है। इस अभ्यास में अलग-अलग दृष्टिकोणों के सवालों को नज़रन्दाज़ कर दिया गया है।

वापस कक्षा में

आइए अब पढ़ाने के ढंग को लेकर इस मार्गदर्शिका के आशयों पर गौर करें। सी.बी.एस.ई. जैसी सर्वशक्तिमान संस्था द्वारा तैयार की गई इस मार्गदर्शिका को - उन परिस्थितियों में, जहाँ अभी भी परीक्षाएँ पालकों, विद्यार्थियों, और स्कूल प्रशासन की एकमात्र नहीं तो प्रमुख चिन्ता तो रहती ही हैं - गम्भीरता से लिया जाना बाध्यता हो जाएगी। इसके अलावा, शिक्षक मार्गदर्शन के लिए इससे मदद लेना चाहेंगे, ताकि यह समझ सकें कि मूल्यांकन की नई व्यवस्थाओं को कैसे अपनाना है। साथ ही, हमें यह भी याद रखना होगा कि यद्यपि सीसीई (सतत समग्र मूल्यांकन) अपने आप में सत्र के अन्त में होने वाली परीक्षा के बदले एक स्वागत योग्य कदम है, पर स्कूल प्रशासन द्वारा सम्भवतः इसे भी पन्नों के ढेर में तब्दील कर दिया जा सकता है। इस अतिरिक्त चुनौती के चलते बहुत सम्भव है कि शिक्षक अपने बोझ को कम करने वाली गतिविधियों और परीक्षाओं को ईज़ाद करने के तरीकों और साधनों के लिए इस मार्गदर्शिका का सहारा लें। ऐसी स्थिति में, जहाँ पब्लिक/प्राइवेट स्कूलों में खास तौर पर, अधिकांश स्कूली शिक्षक बहुसंख्यक समुदाय की ऊँची जाति/ऊँचे वर्ग की महिलाएँ होती हैं, देखने वाली बात है कि इस मार्गदर्शिका का उपयोग किस प्रकार यथास्थिति को बनाए रखने के लिए किया जा सकता है; बजाय कि विवादपूर्ण माने जाने वाले ऐसे मुद्दों पर सवाल-जवाब और बहस करने, वाद-विवाद और चर्चा करने के कौशलों को विकसित करने के जो कक्षा की शान्ति को भंग कर सकते हों।

दूसरे शब्दों में, पूरी तरह से इस मार्गदर्शिका के अनुसार चलने पर, एनसीएफ 2005 में छिपी सम्भावनाएँ, साथ ही उसकी प्रेरणा से तैयार की गई पाठ्यसामग्री यदि पूर्णतः खारिज नहीं भी हो तो भी उसकी गुणवत्ता में कमी ज़रूर आ जाएगी। इस स्थिति में सुधार करने के लिए ज़बरदस्त सांस्थानिक और व्यक्तिगत ऊर्जा और सोच की ज़रूरत होगी, जो अभी तत्काल में तो उपलब्ध नहीं प्रतीत होती।

इस बीच, हम रवीन्द्रनाथ टैगोर की उस प्रार्थना को फिर से याद कर सकते हैं, जो सौ साल से भी ज़्यादा पहले कही गई थी, इसलिए भी क्योंकि हम उनकी 150वीं जयन्ती काफी ज़ोर-शोर से मना रहे हैं:

जहाँ मन भयमुक्त हो,
और मस्तक ऊँचा रहे;
जहाँ ज्ञान स्वतंत्र हो; ...
जहाँ विवेक की निर्मल धारा
मृत रूढ़ियों के निर्जन रेगिस्तान में
अपनी दिशा न खो बैठी हो; ...
हे ईश्वर उस स्वतंत्रता के स्वर्ग में
मेरा देश अपनी आँखें खोले।

कुमकुम रॉय*: सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़, स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली में पढ़ाती हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवादः भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता का अध्ययन। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।
***आभार:** अनीता रामपाल और 16 जून 2011 को सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ ऐजुकेशन (दिल्ली विश्वविद्यालय) में आयोजित चर्चा में भाग लेने वाले तमाम प्रतिभागियों को धन्यवाद कि उन्होंने अपने जीवन्त और अनुभवजन्य विचार बाँटे जिनसे मुझे इस लेख में प्रस्तुत किए गए कुछ विचारों को स्पष्ट करने में मदद मिली।